पितरोंका समयविभाग और श्राद्धविवेचन

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शास्त्री, 'सारस्वत', विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

आश्विनमें जो वार्षिक (पार्वण) श्राद्ध आस्तिक जनोंके घरोंमें हुआ करता है, उसका संक्षिप्त शास्त्रीय और वैज्ञानिक रहस्य बताते हुए हम पहले उसका समय-क्रम बताते हैं कि पितरोंकी घड़ीमें किस-किस तिथिमें क्या समय होता है।[1] 'कल्याण'-पाठक इसे अवधानसे देखेंगे—ऐसी आशा है।

पितरोंका समय-विभाग

शुक्ल-पक्ष-तिथि		पितरोंका समय		
प्रतिपद्—१	मध्याह्न	घंटा	१२.४८	मिनट
द्वितीया—२	"	"	१.३६	"
तृतीया—३	"	"	२.२४	"
चतुर्थी—४	"	"	३.१२	"
पञ्चमी—५	अपराह्न	"	४.०	"
षष्ठी—६	"	"	४.४८	"
सप्तमी—७	"	"	५.३६	"
अष्टमी—८	सायं	"	६.२४	"
नवमी—९	"	"	७.१२	"
दशमी—१०	रात्रि	"	८.०	"
एकादशी—११	"	"	८.४८	"
द्वादशी—१२	"	"	९.३६	"
त्रयोदशी—१३	"	"	१०.२४	"
चतुर्दशी—१४	"	"	११.१२	"
पूर्णिमा—१५	मध्यरात्रि	"	१२.०	"

कृष्ण-पक्ष-तिथि		पितरोंका समय		
प्रतिपद्—१	मध्यरात्रि	घंटा	१२.४८	मिनट
द्वितीया—२	"	"	१.३६	"
तृतीया—३	"	"	२.२४	"
चतुर्थी—४	"	"	३.१२	"
पञ्चमी—५	उषा	"	४.०	"
षष्ठी—६	"	"	४—४८	"
सप्तमी—७	"	"	५.३६	"
अष्टमी—८	प्रातः	"	६.२४	"
नवमी—९	"	"	७.१२	"
दशमी—१०	दिन	"	८.०	"
एकादशी—११	"	"	८.४८	"
द्वादशी—१२	"	"	९.३६	"
त्रयोदशी—१३	"	"	१०.२४	"
चतुर्दशी—१४	"	"	११ १२	"
अमावस्या—३०	मध्याह्न	"	१२.०	"

इस समय विभागसे—

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लं स्वप्नाय शर्वरी॥
(मनुस्मृति १ । ३६)

मनुष्योंका एक मास पितरोंका एक दिन-रात होता है। कृष्णपक्ष पितरोंके कार्यके लिये होता है, अतः वह पितरोंका दिन होता है और शुक्लपक्ष सोनेके लिये है, अतः वह पितरोंकी रात होता है। यह सनातनधर्मका सिद्धान्त वैज्ञानिक होनेसे मान्य एवं सत्य सिद्ध हुआ है।

इस लोकसे मरकर गये हमारे पितरोंकी अवस्थिति पितृलोकमें होती है। हमें उनके मध्याह्न-कालमें उन्हें भोजन पहुँचाना है। उसमें दो प्रकार हैं—एक तो यह कि हमें उनके नामसे अग्निमें हविका हवन (स्वधा) करना चाहिये; क्योंकि अथर्ववेद संहितामें मृत पितरोंके खिलानेके लिये आह्वानार्थ अग्निसे प्रार्थना की गयी है—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे॥
(अथर्ववेद शौ० सं० १८ । २ । ३४)

१. पृथ्वीकी प्रति तिथि पितरोंके ४८ मिनटके बराबर होती है। अपनी घड़ीके क्रममें हम उनके समयका ज्ञान उपर्युक्त तालिकासे कर सकते हैं।

अर्थात्—अग्निदेव ! जो पृथ्वीमें गाड़े गये हैं, जो जलमें प्रवाहित किये गये हैं या जो चितामें जलाये गये हैं अथवा अन्तरिक्षमें नष्ट हो गये हैं, उन सभी पितरोंको आप इस श्राद्ध-कार्यमें बुला लायें ।'

महाभारत-आदिपर्वमें भी अग्निकी उक्ति है—

वेदोक्तेन विधानेन मयि यद् हूयते हविः ।
देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै ॥
(७ । ७)

देवतानां पितॄणां च मुखमेतदहं स्मृतम् ।
(७ । १०)

अमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः ।
मन्मुखेनैव हूयन्ते भुञ्जन्ते च हुतं हविः ॥
(७ । ११)

(वेदोक्त विधानसे मुझ-अग्निमें जिस हविका हवन होता है, उससे देवता तथा पितर तृप्त हो जाते हैं । देवताओं तथा पितरोंका मुख मैं (अग्नि) हूँ । अमावस्यामें पितर तथा पूर्णिमामें देवता मेरे मुखसे ही हवि खाते हैं ।)

दूसरा प्रकार यह है कि—अग्निके सहोदर ब्राह्मणकी जठराग्निमें ब्राह्मणके मुखके द्वारा उन देव एवं पितरोंके नामसे हव्य-कव्य समर्पित किया जावे ।—

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
(मनु० ३ । ९८)

(विद्या एवं तपसे समृद्ध ब्राह्मणके मुख वा अग्निमें आहुति डाली जाये ।) अग्नि और ब्राह्मणकी सहोदरतामें प्रमाण यह है कि ब्राह्मण तथा अग्नि दोनोंकी विराट् पुरुषके मुखसे उत्पत्ति वेदादि शास्त्रोंमें कही गयी है; जैसा कि—

'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्' (यजु० माध्यं० सं० ३१ । ११)
मुखादग्निरजायत' (माध्यं० ११ । १२)

इसलिये शास्त्रोंमें ब्राह्मणोंको आग्नेय वा अग्नि कहा गया है । तभी मीमांसादर्शनके ३ । ४ । २४ सूत्रके श्रीशंकराचार्यके भाष्यमें **'आग्नेयो वै ब्राह्मणम्'** श्रुतिपर प्रकाश डालते हुए इस प्रकार प्रश्नोत्तर प्रक्रिया आयी है—

(प्रश्न) अनाग्नेय ब्राह्मणोंमें आग्नेय आदि शब्द किस सम्बन्धसे कहे जाते हैं ? (उत्तर) वे दोनों एक जातिवाले हैं, जैसे कि कृष्णयजुर्वेद सं० में है कि प्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टि सोची, उसमें अग्निने योग दिया, मनुष्योंमें ब्राह्मण मुखसे उत्पन्न हुए इत्यादि । यहाँपर अग्नि एवं ब्राह्मणकी एक-जातीयता स्पष्ट शब्दोंमें कही गयी है; क्योंकि दोनोंकी उत्पत्ति मुखसे हुई ।*

कुछ अन्य प्रमाण भी देख लेने चाहिये । मनुस्मृतिमें कहा गया है—

—अग्नि न हो, तो (पितृदान) ब्राह्मणको ही दे दे ।

'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ एवोपपादयेत्' यह कहकर वहाँ हेतु दिया गया है—

'यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते' ।
(३ । २ । १२)

यहाँ मन्त्रद्रष्टाओंद्वारा अग्निको ब्राह्मण माना गया है । कठोपनिषद्में कहा है—

'वैश्वानरः प्रविशति अतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
(१ । १ । ७)

यहाँपर ब्राह्मणको वैश्वानर अग्नि माना गया है । यहाँ स्वामी श्रीशंकराचार्यने भाष्यमें कहा है—**'वैश्वानरोऽग्निरेव साक्षात् प्रविशति अतिथिः**

---

* (प्रश्न) अनाग्नेयेषु (ब्राह्मणेषु) आग्नेयादिशब्दाः केन प्रकारेण ? (उत्तर) गुणवादेन । (प्र०) को गुणवादः ? (उ०) अग्निसम्बन्धः । (प्र०) कथम् ? (उ०) एकजातीयकत्वाद् (अग्निब्राह्मणयोः) । (प्र०) किम् एकजातीयत्वं (तयोः), (उ०) प्रजापतिरकामयत—प्रजाः सजेयमिति स मुखतः त्रिवर्णं निरमिमीत । तम् अग्निदेवता अन्वसृज्यत, ब्राह्मणो मनुष्याणाम्'·····। यस्मात् ते मुख्याः, मुखतोऽन्वसृज्यन्त' ।

सन् ब्राह्मणो गृहान्' भविष्यपुराणमें भी कहा है—
'ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु' (ब्राह्मपर्व १३ । ३६) ।

निष्कर्ष यह कि प्रथम प्रकारसे साक्षात् अग्नि और दूसरे प्रकारसे ब्राह्मणस्थ वैश्वानर अग्नि कव्यको सूक्ष्म करके पितरोंको पहुँचाते हैं । वे पितर उस सूक्ष्म कव्यसे तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि—वे स्वयं सूक्ष्म शरीरात्मक होते हैं । इसी कारण उनके लिये स्थूलसे सूक्ष्मभूत भोजनकी आवश्यकता होती है। उसीसे उनकी तृप्ति होती है ।

इसको इस प्रकार समझना चाहिये—हम अपने मुखद्वारा स्थूल भोजनको अपने पेटमें भेजते हैं, परंतु हमारी आत्मा सूक्ष्म है, उसके लिये सूक्ष्म भोजन अपेक्षित है । उस समय उस स्थूल भोजनको हमारी जठराग्नि सूक्ष्म करके हमारी सूक्ष्म आत्माको सौंप देती है । उस सूक्ष्म तत्त्वसे हमारी सूक्ष्म अन्तरात्मा तृप्त हो जाती है । यहाँपर वही स्वयं ही यह कार्य करती रहती है; हमें वहाँ कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती ।' इस प्रकार सूक्ष्म पितर भी हमारे दिये हुए स्थूल भोजनके अग्नि एवं ब्राह्मणाग्निद्वारा किये गये सूक्ष्मतत्त्वको प्राप्त करके तृप्त हो जाया करते हैं । यहाँपर ब्राह्मणकी अग्नि व्यापक-महाग्निके साथ मिलकर स्वयं ही उस कार्यको करती जाती है । वहाँपर उसके लिये ब्राह्मणको कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती ।

वादी-प्रतिवादी सभी मानते हैं कि यज्ञसे प्रसन्न हुए देवता वृष्टि करते हैं; जैसा कि श्रीमनुजीने कहा है—

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिः ।' (३ । ७६)

इसी प्रकार श्राद्धमें भी जब कव्य (पितृहवि) को अग्निका सहोदर ब्राह्मण एवं अग्नि प्राप्त करते हैं, तब ब्राह्मणकी अग्नि उस कव्यको सूक्ष्म करके स्वयं भी सूक्ष्म होकर व्यापक महाग्निके साथ मिलकर आकाशाभिमुख चन्द्रलोकस्थ पितरोंको सौंप देती है । इससे वे पितर तृप्त होकर अपने माहात्म्यसे श्राद्ध करनेवालेके धान्य, सन्तानादिको कर देते हैं ।

जैसे देवताओंको **'सोमाय स्वाहा', 'वरुणाय स्वाहा'** आदि मन्त्रोंसे दी हुई हविको सूर्य खींचते हैं, वैसे ही पितरोंके उद्देश्यसे दी हुई हविको सूर्य खींचकर अपनी सुषुम्णा रश्मिसे प्रकाशित चन्द्रलोकमें भेज देते हैं; वह चंद्र अपनेमें स्थित पितरोंको उक्त हवि पहुँचा देता है । उस श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणकी अग्नि मन्द न पड़ जाय, जिससे महाग्निसे उसका मेल न हो सके, इसलिये शास्त्रोंने उस दिन कई विभीषिकाएँ देकर उसे पूर्वरात्रिमें संयमी रहनेके लिये आदिष्ट किया है—यही उसमें रहस्य है । शेष ब्राह्मणोंको भस्मीभूत (मनु० ३ । ९७) कहा गया है । इसलिये पितृ-श्राद्धमें दोषहीन विशिष्ट ब्राह्मणको बुलानेको मनुस्मृति आदिमें कहा है ।

कई लोग देवताओंको जड़ मानते हैं, तब सूर्य-चन्द्रादि किरणोंके भी जड़ होनेसे वे उस पितरको दिया हुआ कव्य कैसे पहुँचा सकते हैं—यह प्रश्न होता है; इसपर उत्तर यह है—हमलोगोंके कर्म भी तो जड़ हुआ करते हैं, वे भी अग्रिम जन्ममें कर्ताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? जैसे कर्मोंके अधिष्ठाता परमात्मा जड़ नहीं हैं, किंतु सर्वव्यापक एवं चेतन हैं; वे ही देव और पितरोंके कर्मोंके भी व्यवस्थापक हैं । वे ही सब व्यवस्थाएँ पूरी करा दिया करते हैं । जैसे हजारों गौओंमें बछड़ा अपनी माताको प्राप्त कर लिया करता है, वैसे ही पुत्रकृत श्राद्ध भी पितरोंके पास उपस्थित हो जाता है ।

यही मृतक-श्राद्धका रहस्य है, जिसको न जानकर प्रतिपक्षिगण अपनी अल्पश्रुतताका परिचय दिया करते हैं । अग्नि पितृलोकस्थ पितरोंको सूक्ष्म कव्य समर्पित करती है—इसमें कई वेद-मन्त्रोंकी साक्षी भी हैं; देखिये—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः
स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥
(अथर्ववेदसं० १८ । २ । ३५)

इससे सिद्ध है कि वेदमें श्राद्धके प्रसङ्गमें प्रयुक्त 'पितृ' शब्द मृत पितृवाचक होता है । इसीलिये वेदमें कहा है—

पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः
(अथर्व० १२ । २ । ४५)
अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु
(अथर्व० १८ । ४ । ४८)

इस प्रकार मृतक-श्राद्धकी वैदिकता सिद्ध हो गयी । यही रहस्य है मृतकके मासिक-श्राद्धका । शारदिक वार्षिक श्राद्ध तो विशिष्ट होता है । भाद्रपद पूर्णिमासे प्रारम्भ होकर आश्विनकी अमावास्यातक सब तिथियोंमें भिन्न-भिन्न पितर भोजन पाते हैं । जैसे हम कभी विवाहादि विशेष अवसरोंपर रात्रिके १२ बजनेके समय भी विशेष भोजन प्राप्त करते हैं, जन्माष्टमी आदिके अवसरपर भक्तगण आधी रातके समय भी पारण करते हैं, उसी प्रकार अपवाद होनेसे पितरोंके विषयमें शुक्ल-पक्षीय क्षयाहादि तिथिमें भी जान लेना चाहिये । वे पितर उस तिथिमें उस मार्गमें होते हैं । तिथियोंका सम्बन्ध चन्द्रमासे होता है । शारदिक श्राद्ध भी पार्वण होनेसे विशेष पितरोंका विशेष पर्व ही समझना चाहिये । तब पितर रातके १२-१ बजे भी भोजन प्राप्त करते हैं । मनुस्मृति आदि प्रोक्त पितृयज्ञमें जीवित-पितरोंका अर्थ हो ही कैसे सकता है ?

श्राद्धमें ब्राह्मण-भोजनके उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र[1] बोधायनीय पितृमेधसूत्र[2] एवं बोधायनीय गृह्यसूत्र[3] और हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र[4]में तो आये ही हैं, मानवगृह्यसूत्रमें भी कहा गया है कि 'श्राद्धमपरपक्षे पितृभ्यो दद्यात् अनु-गुप्तमन्ने ब्राह्मणान् भोजयेत् । नावेदविद् भुञ्जीत इति श्रुतिः (२ । ९ । ९-१०) इत्यादि । इसी प्रकार— 'यां ते धेनुं विपृणामि यमु ते क्षीरमोदनम्' (अथर्ववेद सं० १८ । २ । ३० और ४ । ३४ । ८) इत्यादिसे मृतकके निमित्त गोदान तथा खीरका विधान है— 'इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु' । महाभारत-वनपर्वमें भी कहा है—

ब्राह्मणा एव सम्पूज्याः पुण्यस्वर्गमभीप्सता ॥
श्राद्धकाले तु यत्नेन भोक्तव्या ह्यजुगुप्सिताः ।
(२०० । १६-१७)

इस प्रकार मृतक-श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन जहाँ वेदादिशास्त्र-सम्मत हुआ, वहाँपर वैज्ञानिक एवं सोप-पत्तिक भी सिद्ध हुआ ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह (आ इह) गच्छत सदः-सदः सदत-सुप्रणीतयः । अत्ता हवींषि प्रयतानि (ऋ० १० । १५ । ११) यहाँ मृतकोंको ही पितर और हविके भक्षणार्थ बुलाकर मृतकपितृश्राद्धको वैदिक सिद्ध किया गया है । 'यान् अग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरो अग्निष्वात्ताः' (शतपथ० २ । ६ । १ । ७) जीवित पितर अग्निदग्ध नहीं होते ।

त्वमग्न ईडितः कव्यवाहनवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादाः पितृभ्यः ते स्वधया अक्षन्नद्धि । (यजुः माध्यं० सं० १९ । ६६) । इस मन्त्रमें कहा है कि पितरने उस अन्नको लिया और खा लिया । यह वैदिक रसीद है ।

श्राद्धभोक्ता जन्मसे ब्राह्मण, वेद-विद्वान् और सदा-चारी होना चाहिये । इस विषयमें पहले स्पष्टता की जा चुकी है ।

पितृलोकका समयक्रम पहले लिखा जा चुका है । पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर होता है । 'सिद्धान्तशिरोमणि'-में लिखा है—

---

१. २ । १७ । ४; २. २ । ११ । ७; ३. २ । १० । ३६; ४. २० । ४ । १०-११;

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे
दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषाम्॥
(सि० शि० गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक १३)

इससे पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर सिद्ध होता है। जब चन्द्रमा शुक्लपक्षमें इस लोकमें अपना प्रकाश करते रहते हैं, तब वे सूर्यसे दूसरे कोनेमें होते हैं, तब पितृलोकमें १५ दिनतक निरन्तर एक रात्रि होती है। जब कृष्णपक्ष होता है, तब इस लोकमें रातको चाँदनी नहीं होती। उस समय चन्द्रलोक सूर्यके निकट होता है, तब पितृलोककी प्रजा निरन्तर (कृष्ण-अष्टमीसे शुक्ल-अष्टमीतक) सूर्यको देखती है। इस प्रकार निरन्तर उसका एक दिन प्रातः ६ से सायं ६ तक होता है। अमावस्याको जब सूर्य-चन्द्र एक राशिमें होते हैं, तब हमारे अपराह्णकालमें सूर्यके चन्द्रलोकके सिरपर होनेसे चन्द्रलोकके उर्ध्वस्थ पितरोंका भोजन-काल (मध्याह्न) होता है। हमारी जब पूर्णिमा होती है, तब सूर्य चन्द्र-लोकके ६ राशिके अन्तरसे बहुत दूर होते हैं। तब चन्द्रलोकमें रात्रि होती है। हमारा ३० दिनका एक मास होता है। परंतु चन्द्रलोकके ऊपर रहते हुए पितरोंका वह २४ घंटेका दिन-रात होता है। इस गणनासे हमारी तिथि पितरोंकी मध्यममानसे ४८ मिनटोंका समय होती है। इससे अमावस्या पितरोंका मध्याह्न है। इसीलिये अमावस्याके श्राद्धका अधिक महत्त्व माना गया है। श्राद्ध शास्त्रीय अवश्यकरणीय कर्त्तव्य और पूर्वजोंमें श्रद्धाका परिचायक अनुष्ठेय कर्त्तव्य है। पितृ-पक्षमें तर्पण करना तथा श्राद्ध करना प्रत्येक आस्तिक धार्मिक-का पावन कर्त्तव्य है।